भारतीय दर्शनों में ध्यान की अवधारणा

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

ध्यान अन्तर की अनुभूति है। अनुभूति को शब्दों द्वारा पूर्णतः समझना असंभव है। ध्यान का अर्थ है चंचलता का निरोध करना, चचलंता को कम करना। दो शब्द है व्यग्र तथा एकाग्र। एक आलबंन पर मन नही टिकता, आलबंन बदलता रहता है। वह मन की व्यग्र अवस्था है। जब मन स्थिर होकर किसी आलंबन पर टिकता है तो उस अवस्था का नाम है एकाग्र अवस्था। ध्यान का प्रारंभिक अर्थ है एक आलंबन पर मन को टिकाने का अभ्यास। जब एक आलंबन पर मन टिक गया हमने जो आलंबन लिया, उसी पर मन टिका रहे तो हमारी एकाग्रता सध गई और चचलंता कम हौ गई। ध्यान का पहला पड़ाव है –चचलंता को कम करने का अभ्यास, एकाग्रता का अभ्याास। इन्द्रियां अपने विषय पर जाती है, वहां से हटा कर इन्द्रियों को भीतर ले जाना। इन्द्रियां जब बार– बार बाहर की तरफ जाती हैं, दृश्य को देखती हैं या अपने विषय के साथ सम्पर्क स्थापित करती हैं तो चंचलता आ जाती है। आन्तरिक समस्या के समाधान का सबसे बढिया सूत्र है इन्द्रियों का सम्यक् नियोजन करना। महर्षि पतंजलि ने मन को महत्व नहीं दिया। उनका योग सूत्र शुरू होता है चित्त की वृत्तियों के निरोध से। चित्त हमारे भीतर की कल्पना है। जो मन के ज्ञानात्मक पक्ष का सचांलन करती है। मन के दो पक्ष है– ज्ञानात्मक तथा भावात्मक। जो उसका ज्ञानात्मक पक्ष है , उसका सचांलन चित्त के द्वारा होता है। जो उसका क्रियात्मक पक्ष है उसका सचांलन भाव के द्वारा होता है। मन दो का प्रितीनिधित्व कर रहा है – चित्त का तथा भाव का। साधना पद्धति में ध्यान का अत्यधिक महत्व है। भारत की सभी चिन्तन पद्धतियों में ध्यान को महत्त्व दिया गया है। ध्यान की अनेक परिभाषाएं मिलती हैं– 'एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमिति– एक विषय में चिन्तन को स्थिर करना ध्यान है। चित्तविक्षेप का त्याग करना ध्यान है– चित्तविक्षेपत्यागो ध्यानं। ध्यान के माध्यम से साधक चित्त की चंचलता रोक कर एकाग्रता द्वारा आत्मिक शक्ति का विकास करता हुआ मुक्तिपथ की ओर अग्रसर करता है। ध्यान तप का एक भेद है। एक आलम्बन पर मन को टिकाना और योग (मन, वचन, काया की प्रवृत्ति) का निरोध करना ध्यान

है। ध्यान की दो भूमिकाएं हैं– एकाग्रतात्मक ध्यान और योगनिरोधात्मक ध्यान। योगनिरोधात्मक ध्यान समग्र रूप से केवली के होता हैं। सामान्य व्यक्ति शक्ति के अभाव में उस सीढ़ी तक नहीं पहुचं सकते। छद्मस्थ व्यक्ति एकाग्रतात्मक ध्यान का अभ्यास करते हैं और अन्ततः योगनिरोधात्मक ध्यान भी। इसमें चंचल मन धीरे–धीरे स्थिर होता जाता हैं। मन की चंचलता स्वाभाविक नहीं है, वह बाह्य वातावरण और वृत्तियों के योग से निष्पन्न होती हैं। उसका मूल–हेतु वृत्ति है। वृत्तियों की जितनी चाह होती है उतना ही मन चंचल होता है। वृत्तियां जितनी क्षीण होती हैं मन उतना ही स्थिर होता हैं। धुंधले और प्रकम्पित दर्पण में प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई नहीं देता। वह जितना स्वच्छ या निर्मल होगा उतना ही स्वच्छ आत्म–दर्शन उसमें होगा। मन के प्रसार को रोक देने पर आत्मा परमात्मा बन जाती है। राग से निवृत्ति के लिए अनित्य भावना और एकत्व भावना का अभ्यास आवश्यक होता हैं। दोष निवृत्ति के लिए आत्मोपम्य की भावना या प्रेम का विकास करना चाहिए। जब मन राग और द्वेष रूपी कल्लोल से चंचल नहीं होगा तो स्थिरता अपने आप सध जाएगी। मन को एकाग्र करने की अनेक पद्धतियां हैं। उनमें एक पद्धति है जागरूक रहना, प्रतिक्षण जागरूक रहना। समय का अधिकांश भाग अतीत और भविष्य में बीत जाता है क्योंकि इन दोनों का क्षेत्र विस्तृत हैं। वर्तमान के क्षण को देखने के लिए पहली भूमिका है– श्वास दर्शन। श्वास दर्शन से धीरे–धीरे मन शान्त होता जाता हैं। दूसरी भूमिका में श्वास की गति–विधि को देखना होता हैं। श्वास के द्वारा जब मन तीक्ष्ण होने लगता है तब शरीर की संवेदनाओं को देखना होता है। मन जितना तीक्ष्ण होगा उतना ही वह शरीर को भेदकर भीतर तक जा सकेगा और उसकी संवेदनाओं को स्पष्टता से पकड़ सकेगा। इस प्रकार क्रमशः मन की स्थिरता बढ़ती जाती हैं। यह पद्धति जागरूकता की है, अप्रमाद की है। ध्यान का प्रवाह लम्बे समय तक नहीं चलता। अनादि काल से मनुष्य इन्द्रियों के द्वारा बाहर की ओर देखता आया है। इसलिए इन्द्रियां बाहर को देखने में अभ्यस्त हो गई हैं। जब साधक अन्तर्मुखी होकर उनसे भीतर देखने का अभ्यास करता हैं तब मन बाहर की ओर अधिक दौड़ता हैं। बहुत कम समय के लिए स्थिर होता है। बार–बार के अभयास से मन की स्थिरता बढ़ती जाती हैं। जैन शास्त्रों में ध्यान क्रमशः इस प्रकार है– आर्त्तध्यान– मनोज्ञ संयोगों का वियोग न हो, उसके लिए सतत

चिन्तन करना तथा अमनोज्ञ के वियोग के लिए सतत चिन्तन करना आर्त्तध्यान है। इसमें कामाशंसा और भोगाशंसा की प्रधानता होती है। इसके चार लक्षण है–आक्रन्द करना, शोक करना, आंसू बहाना, विलाप करना। रौद्रध्यान– जिसका चित्त क्रूर व कठोर हो, वह रुद्र होता है। उसके ध्यान को रौद्र ध्यान कहते हैं। इसके चार लक्षण हैं– (1) हिंसा आदि से प्रायः विरत न होना (2) हिंसा आदि की प्रवृत्तियों में जुटे रहना (3) आज्ञानवश हिंसा में प्रवृत्त होना (4) प्राणांतकारी हिंसा आदि करने पर भी पश्चात्ताप न होना। धर्म्यध्यान– वस्तुधर्म या सत्य की गवेषणा में परिणत चेतना की एकाग्रता को धर्म्य–ध्यान कहा जाता है। शुक्लध्यान– आत्मा के शुद्ध रूप की सहज परिणति को शुक्लध्यान कहते हैं। इस प्रकार भारतीय दर्शनों में ध्यान एक प्रमुख विषय रहा है।